वैदिक व्याख्यान माला — बीसवाँ व्याख्यान

मानवके दिव्य देहकी सार्थकता

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष-स्वाध्याय-मण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्याय-मंडल, पारडी (जि. सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

मानवके दिव्य देहकी सार्थकता

पवित्र नर देह

मनुष्यको जो देह प्राप्त हुआ है, उसका वर्णन आज कलके लोग ' पीप विष्ठा मूत्रका गोला ' ऐसा करते हैं और इसके विषयमें मनुष्यके मनमें घृणा उत्पन्न हो जाय, ऐसी दृष्टिसे इस नरदेहके विषयमें बोलते हैं। परन्तु वेदोपनिषदोंमें जो इसकी दिव्यताका वर्णन किया है, वह सचमुच मननीय है। देखिये ऐतरेय उपनिषदमें कहा है कि, जिस समय देवताओंके सामने परमेश्वरने अनेक देह लाये, उस समय मनुष्यदेह ही सबसे उत्तम है, ऐसा उन देवोंने कहा और उन देवताओंने उसमें प्रवेश किया। यह वर्णन वहां इस तरह लिखा है—

ताभ्यो गामानयत्, ता अब्रुवन्, न वै नोऽयमलमिति। ताभ्यो अश्वमानयत्, ता अब्रुवन्, न वै नोऽयमलमिति। ताभ्यः पुरुषमानयत्, ता अब्रुवन्, सुकृतं बतेति। पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीत्, यथायतनं प्रविशतेति।

ऐ० उ० १।२

' उन देवताओंके सामने ईश्वरने गौको लाया, उन्होंने उस गौके देहको देखा और कहा कि, यह गौका देह जैसा चाहिये वैसा नहीं है। तब ईश्वरने उनके सामने घोडेका देह लाया, उन देवताओंने उस घोडेके देहको देखा और कहा कि, यह भी जैसा चाहिये वैसा नहीं है।' तब ईश्वरने उनके सामने मनुष्य देह लाकर रखा, उन देवोंने इस देहको देखा और कहा कि ' वाह वाह ! यह उत्तम है, जैसा चाहिये वैसा यह है। निःसंदेह यह उत्तम बना है।' जब देवताओंको यह देह पसंद आया, तब ईश्वरने कहा कि ' हे देवताओ ! तुम अपने अपने योग्य स्थानपर प्रविष्ट होकर वहां रहो।'

इसके बाद सब देवताएँ इस देहमें प्रविष्ट हुईं और अपने अपने स्थानपर रहने लगीं। आंखमें सूर्य, नासिकामें वायु, कानोंमें दिशाएं, मुखमें अग्नि, इस तरह सब तैंतीस देवताएं इस शरीरमें अंशरूपसे रहने लगीं। अर्थात् यह शरीर ' देवताओंका मन्दिर है ' पीप विष्ठा मूत्रका गोला इसको कहना योग्य नहीं है। ऐसा कहना अवैदिक होनेसे त्याज्य है।

वेदका कहना है कि, यह शरीर 'देवताओंका मन्दिर' है। परंतु जैन बौद्धोंने इसी शरीरको पीप-विष्ठा-मूत्रका गोला माना और इस मतके प्रचारकोंने इस शरीरका वर्णन इस तरह घृणा होने योग्य निंदनीय शब्दोंसे किया है और इनके पश्चात् सब साधुसंतोंने भी इस शरीरकी निंदा ही की है!!!

पुरुषार्थका साधन

संतोंमें समर्थ रामदास स्वामी जो छत्रपति शिवाजी महाराजके गुरु थे। वे इस शरीरके विषयमें ऐसा लिखते हैं—

धन्य धन्य हा नर देहो। येथील अपूर्वता पहा हो।
जो जो कीजे परमार्थलाहो। तो तो पावे सिद्धितें॥

" यह नर देह धन्य है, इस शरीरमें रहकर जो पुरुषार्थ किया जाय, वह पुरुषार्थ यहां सिद्ध होता है।" अर्थात् ऐसा यह नर देह पुरुषार्थ साधन होनेकी दृष्टिसे अत्यंत उत्तम है।

मनुष्य इस देहमें रहकर जो जो पुरुषार्थ करना चाहता है, वह यहां तपस्या करनेसे सिद्ध होता है। ' धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ' ये चारों पुरुषार्थ इस नरदेहके आश्रयसे ही सिद्ध होते हैं। इस कारण नरदेह श्रेष्ठ है, यह श्रेष्ठता साधनकी दृष्टीसे है।

पुरुषार्थ करनेका मुख्यसाधन यह मानवी शरीर है। मनुष्य शरीर न मिला अथवा निर्बल रहा, तो कोई पुरुषार्थ नहीं हो सकता। इसीलिये इस शरीरका संरक्षण करना चाहिये और इसको कार्यक्षम भी बनाना चाहिये। यह

शरीर रोगी निर्बल दीन क्षीण रहा, तो कोई पुरुषार्थ इस शरीरसे होनेकी संभावना ही नहीं है। इसलिये इस शरीरको सामर्थ्यशाली बनानेका यत्न करना अत्यंत आवश्यक है। शरीरको कार्यक्षम बनाना मनुष्यका एक अत्यंत आवश्यक कार्य है। वेदने यह इस तरह बताया है। इस उपदेशके मंत्र अब देखिये—

(ब्रह्माऋषिः । अंगानि देवताः)

वाङ् म आसन्, नसोः प्राणः, चक्षुरक्ष्णोः।
श्रोत्रं कर्णयोः, अपलिताः केशाः, अशोणा दन्ताः।
बहु बाह्वोर्बलं, ऊर्वोरोजः, जंघयोर्जवः
पादयोः प्रतिष्ठा, अरिष्टानि मे सर्वा, आत्माऽनिभृष्टः॥
तनूस्तन्वा मे, सहे दतः, सर्वमायुरशीय।
स्योनं मे सीद, पुरुः पृणस्व, पवमानः स्वर्गे॥

अथर्व० १९।६०;६१

" (मे आसन् वाक्) मेरे मुखमें उत्तम वक्तृत्व शक्ति रहे, (नसोः प्राणः) मेरे नाकमें बलवान् प्राण संचार करता रहे, (अक्ष्णोः चक्षुः) मेरे आंखोंमें उत्तम दर्शन शक्ति रहे, (कर्णयोः श्रोत्रं) मेरे कानोंमें उत्तम श्रवण शक्ति रहे, (केशाः अपलिताः) मेरे बाल श्वेत न हों, (दन्ताः अशोणाः) मेरे दांत मलिन न हों, (बाह्वोः बहु बलं) मेरे बाहुओंमें बहुत बल रहे, (ऊर्वोः ओजः) मेरी जांघोंमें बडी शक्ति रहे, (जंघयोः जवः) मेरी पिंडरियोंमें बडा वेग रहे, (पादयोः प्रतिष्ठा) मेरे पांवोंमें स्थिरता रहे, पांव कभी कांपने न लगें, (मे सर्वा अरिष्टानि) मेरे सर्व अवयव अच्छी अवस्थामें रहें, रोगी न हों, (मे आत्मा अनिभृष्टः) मेरा आत्मा निरुत्साही न हो, (मे तन्वा तनूः) मेरे शरीरके साथ शरीरकी स्वस्थता रहे (दतः सहे) मेरा दमन करनेवाले शत्रुका पराभव करनेमें मैं समर्थ हो जाऊं, (सर्वं आयुः अशीय) संपूर्ण आयुको मैं प्राप्त होऊं, मेरी अकालमें मृत्यु न हो, (मे स्योनं सीद) सुखदायी आसन पर बैठ, अर्थात् मैं सुखदायक स्थानपर बैठूंगा, (पुरुः पृणस्व) भरपूर भर दो, हमारे स्थान, या पात्र भरपूर भरे हों, खाली न हों, (पवमानः स्वर्गे) तू पवित्र होता हुआ स्वर्गमें विराजमान हो, तू स्वयं पवित्र बन और सुखपूर्ण स्थानमें विराजमान हो, तुम्हारी जितनी पवित्रता होगी, उतना सुख तुम्हें प्राप्त होता रहेगा। "

इस सूक्तमें शरीरके अनेक अवयवोंका उल्लेख करके उनमें कौन कौनसी शक्ति रहनी चाहिये, उसका निर्देश किया है। शरीरमें अन्यान्य अवयव भी हैं। उनका नामनिर्देश यहां किया नहीं है, तथापि उनके विषयका ज्ञान हम अनुमानसे जान सकते हैं। इस शरीरमें ३३ देवताओंके ३३ केन्द्र हैं। उनमें रहनेवाली शक्ति वहां रहनी चाहिये और वह पवित्र स्थितिमें रहनी चाहिये। इस मंत्रके ' पवमानः स्वर्गे ' इन पदोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, पवित्र बननेसे स्वर्ग सुख प्राप्त होता है। शक्ति बढनी चाहिये और वह पवित्र कार्यमें पवित्र पद्धतिसे प्रयुक्त होनी चाहिये। कोई भी शक्ति यदि पवित्र नहीं बनी, तो उससे स्वर्ग सुख नहीं मिलेगा। स्वर्गसुख पवित्रताके साथ संबंध रखता है।

स्वर्ग सुवर्ग है

स्वर्ग सुवर्ग है। उत्तम वर्गके लोगोंका स्थान सुवर्ग लोक है। यह (पवमानः) पवित्र बननेसे ही मिलता है। लोग शक्तिमान बनें और साथ साथ पवित्र भी बनें, तो उनका ' सुवर्ग लोक ' होता है और वहां सुख मिलता है। अपवित्रताके साथ बल रहा तो वह असुरलोक होता है और वह दुःखका आगर होगा। इस दृष्टिसे ' पवमानः स्वर्गे ' ये पद बडे महत्त्वके हैं। मनुष्य सुख चाहता है, तो वह सुख उसको पवित्र होनेसे ही मिल सकता है, पवित्रताके साथ बल भी रहना चाहिये। अपवित्रताके साथ बल रहा, तो वहां असुरत्व उत्पन्न होगा और सुखात्मक स्वर्ग मिलनेके स्थानपर दुःख उसको मिलेगा। यह भाव यहां ध्यानमें रखना चाहिये।

शरीरका प्रत्येक अवयव अपने बलसे युक्त हो, वह पवित्र रहे, पवित्र कार्यमें लगा रहे, पवित्र कार्य ही करता रहे। यह इस मंत्रने बताया है। शरीरको निर्बल करना नहीं है। इंद्रियोंको अशक्त बनाना नहीं है। इन्द्रियोंको और शरीरको बलवान बनाना है और साथ साथ सत्प्रवृत्त और पवित्र करना है और पवित्रतम श्रेष्ठ कर्ममें उनको सतत लगाना है। इसीका नाम यज्ञीय जीवन है। यज्ञसे स्वर्ग मिलनेका यही तात्पर्य है।

दीर्घायुकी प्राप्ति

मनुष्यको शरीर प्राप्त हुआ है, उसके अवयव भी सुदृढ और बलवान बने हैं। अब इस शरीरसे कार्य लेनेके लिये

इसको दीर्घायु प्राप्त करनी चाहिये। दीर्घायु प्राप्त होनेके बिना मनुष्यकी अन्य शक्तियां निकम्मी हो जाती हैं। मनुष्यने विद्या प्राप्त की, बल प्राप्त किया ऐश्वर्य प्राप्त किया और जो आवश्यक था वह प्राप्त किया और यदि उसको दीर्घायु न मिली, तो उन ऐश्वर्यों और उन ज्ञानोंका उपयोग क्या है? इसलिये वेदने कहा है—

पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतम्।
ऋ० ७।६६।१६

पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतम्।
अदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥
वा० यजु० ३६।२४

पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतम्।
बुध्येम शरदः शतं, रोहेम शरदः शतम्।
पूषेम शरदः शतं, भवेम शरदः शतम्।
भूयेम शरदः शतं, भूयसीः शरदः शतात्।
अथर्व० १९।६७

पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतम्।
नन्दाम शरदः शतं, मोदाम शरदः शतम्।
भवाम शरदः शतं, शृणवाम शरदः शतम्।
प्रब्रवाम शरदः शतं, अजीताः स्याम शरदः शतम्॥
तै० आ० ४।४२।५

इस तरह शतायु होनेकी इच्छा प्रकट हुई है। ऋग्वेदमें दो मांगें थी, वा० यजुर्वेदमें छः दीखती हैं और अथर्व तथा तै० आरण्यकमें आठ दीखती हैं। सबका विचार एकदम ही करना योग्य है। ऋग्वेदके दोनों वचन चारों स्थानोंमें समान ही हैं। (१) हम (जीवेम) सौ वर्ष जीवित रहें, (२) हम सौ वर्षतक (पश्येम) देखें, अर्थात् हमारी दृष्टि सौ वर्षतक अच्छी अवस्थामें रहें, मलीन वा क्षीण न हो। हमारे नेत्र सौ वर्षतक देखनेका कार्य उत्तम रीतिसे करनेमें समर्थ हों। (३) हम सौ वर्षतक (शृणुयाम, शृणवाम) उपदेश सुनते रहें, अच्छे वचन सुनते रहें, हमारे कान निर्बल न हों, सुननेका कार्य करनेमें समर्थ हों। (४) हम सौ वर्षतक (बुध्येम) ज्ञान प्राप्त करते रहें, हमारी बुद्धि सौ वर्षतक ज्ञान ग्रहणका कार्य करती रहे। (५) हम सौ वर्षतक (रोहेम) बढते रहें, हमारी शक्ति क्षीण न हो, प्रत्युत हमारी शक्तिका विकास होता रहे। (६) हम सौ वर्षतक (पूषेम) हृष्टपुष्ट होते रहें, क्षीण न हों, दुर्बल न हों, प्रत्युत पुष्ट होकर सौ वर्षतक रहें। (७) हम सौ वर्षतक (भवेम) रहें, प्रभावी बनकर रहें, शत्रुका पराभव करते रहें, उन्नत होते रहें। (८) हम सौ वर्षतक (भवाम) प्रगति करते रहें। (९) हम सौ वर्षतक (नन्दाम) आनंदित होते रहें, हम सौ वर्षतक दुःखी न हों। (१०) हम सौ वर्षतक (मोदाम) सुखसे रहें, हमारे समीप कष्टके समय न आजांय। (११) हम सौ वर्षतक (भूयेम) उन्नत होते रहें, प्रगति करते रहें। (१२) हम सौ वर्षतक (प्र ब्रवाम) प्रवचन करते रहें, ज्ञानका प्रचार करते रहें, ज्ञानदानद्वारा लोगोंको सज्ञान करते रहें। (१३) हम सौ वर्षतक (अजीताः) पराभूत न हों, कोई शत्रु हमारा पराभव न कर सके ऐसी हमारी शक्ति सौ वर्षतक रहे। (१४) हम सौ वर्षतक (अदीनाः स्याम) दीन क्षीण निर्बल न बनें, परंतु हृष्टपुष्ट और कार्यक्षम रहें, रोगी न बनें परंतु नीरोग रहें और कार्य करते रहें। (१५) हम सौ वर्षसे भी (भूयसीः भूयः) अधिक ज्ञान प्राप्त करते रहें, उपदेश करते रहें, उन्नत होते रहें।

अर्थात् हम सौ वर्ष तो रहें, परंतु उससे भी अधिक हम जीवित रहें, दीन क्षीण और निर्बल न हों, परंतु हृष्टपुष्ट नीरोग बलवान रहकर ज्ञानग्रहण और ज्ञानोपदेश करते रहें। ज्ञानदान द्वारा जनताका उद्धार करते रहें।

इन मन्त्रोंमें सौ वर्षकी पूर्ण आयुके साथ जो कार्य कहे हैं, वे मननीय हैं। देखिये इनका विचार ऐसा है—

(जीवेम) जीवन शक्ति प्राणशक्ति ही है, प्राणायामादि अनुष्ठानसे इस प्राणका बल बढाकर जीवन शक्ति बढानी चाहिये। (पश्येम) दर्शन शक्ति आंखोंमें रहती है, नेत्र-व्यायाम तथा त्राटकादिसे दर्शनकी शक्ति सुरक्षित रखनेका अनुष्ठान करना योग्य है। (शृणुयाम, शृणवाम) श्रवण शक्ति कानोंमें रहती है, सूक्ष्मध्वनिपर चित्त एकाग्र करनेसे तथा कानोंको ठीक रखनेसे यह श्रवणेन्द्रियकी शक्ति कानोंमें ठीक तरह रहती है, (बुध्येम) बुद्धिकी शक्ति बढानेके लिये उत्तम ग्रंथ पठन करना और स्मरण आदि शक्तियोंको बढाना योग्य है। (रोहेम, पूषेम) हृष्टपुष्ट रहनेके लिये सूर्यनमस्कार, आसन आदि व्यायाम तथा उत्तम अन्नका सेवन करना योग्य है। (भवाम, भूयेम) होना, प्रभाव-

शाली जीवन व्यतीत करना यह वीरत्वके भावसे होता है, अतः यह भाव अपने अन्दर बढाना। (नन्दाम, मोदाम) आनन्दित रहना, प्रसन्नचित्त रहना। कभी दुःखी दुर्मुख न रहना। यह अभ्याससे सिद्ध होता है। (प्रब्रवाम) प्रवचन करना, उपदेश करना, ज्ञान देकर दूसरोंको सज्ञान करना, जो स्वयं जानते हैं वह दूसरोंको सिखाना। (अजीताः) विजयी होना, शत्रुका पराजय करना। (अदीनाः) दीन दुर्बल रोगी न होना और (भूयसीः) सौसे भी अधिक वर्षतक जीवित रहना और यही करना। यह सब आयुभर करनेका कार्यक्रम है। जो करना चाहते हैं वे यह अपने जीवनमें ढालें और लाभ उठावें।

और भी देखिये पूर्णायुके विषयमें क्या कहा है—

जीवाःस्थ, जीव्यासं, सर्वमायुर्जीव्यासम्।
उपजीवाःस्थ, उपजीव्यासं, सर्वमायुर्जीव्यासम्।
संजीवाःस्थ, सं जीव्यासं, सर्वमायुर्जीव्यासम्।
जीवलाःस्थ, जीव्यासं, सर्वमायुर्जीव्यासम्।
इन्द्र जीव, सूर्य जीव, देवा जीवा, जीव्यासमहम्।
सर्वमायुर्जीव्यासम् अथर्व० १९।६९–७०

'तुम (जीवाः) जीवनरूप हो। मैं जीऊं और संपूर्ण आयुतक जीवित रहूँ। तुम (उपजीवाः) समीपमें जीवन रूप हो। मैं समीपमें रहकर जीऊं और संपूर्ण आयुतक जीवित रहूं। तुम (संजीवाः) सब मिलकर जीवित रहनेवाले हो, मैं सबके साथ मिलकर जीवित रहूं, मैं संपूर्ण आयुतक जीवित रहूं। तुम (जीवलाः) चैतन्यरूप हो, मैं चैतन्यरूप होकर रहूं और संपूर्ण आयुतक जीवित रहूं। हे इन्द्र! तू जीवित रह, हे सूर्य! तू जीवित रह, हे देवो! तुम जीवित रहो। (अहं जीव्यासं) मैं जीवित रहूं और मैं सपूर्ण आयुतक जीवित रहूं।'

इन मंत्रोंमें कहा है कि संपूर्ण आयुतक जीवित रहना है, बीचमें अल्प आयुमें मरना नहीं है। व्यक्तिके रूपमें जीवित रहना चाहिये, श्रेष्ठ सत्पुरुषोंके समीप रहकर जीवित रहना चाहिये, सब समाजके लोगोंके साथ मिलकर जीवित रहना चाहिये और आत्मस्वरूप जानकर उस शक्तिसे जीवित रहना चाहिये। जीवनके ये विभेद हैं। वैयक्तिक अकेला ही रहकर जीवन व्यतीत करना यह एक साधारणसा जीवन है। दूसरा जीवन श्रेष्ठ सत्पुरुषोंके साथ रहकर जीना यह श्रेष्ठ जीवन है। इससे श्रेष्ठ बनकर सामाजिक, अथवा सामुदायिक हितसंवर्धन करनेके लिये जीवित रहना, यह उससे भी श्रेष्ठ जीवन है, क्योंकि इसमें जीवनका यज्ञ होता है। जो जीवनको पवित्र बनाता है। अपना चैतन्यस्वरूप जानकर, उस प्रेरक आत्मशक्तिको अनुष्ठानसे बढाकर, लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करते हुए अपना जीवन व्यतीत करना, यह उच्चजीवनकी रीति सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें अनेक लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करना होता है। जिस जीवनमें अनेक पुरुषोंको श्रेष्ठसत्कार्यमें प्रेरित करना होता है, उस जीवनको श्रेष्ठ होनेमें संदेह ही क्या है?

अपने शरीरमें इन्द्र है जो जीवात्मा है, अपने शरीरमें सूर्य नेत्रस्थानमें रहा है, अपने शरीरमें ३३ देव सब इंद्रियोंमें रहे हैं, ये यहां मेरे अधीन रहकर अपना अपना कार्य उत्तम रीतिसे करते रहें, पूर्ण आयुतक कोई देव अपना कार्य करनेमें असमर्थ न हो, सब देव इस शरीरके इंद्रियोंके स्थानोंमें रहकर अपना कार्य उत्तम रीतिसे करें और उनका अधिष्ठाता मैं उनका संचालन करता रहूं और इस तरह मैं पूर्ण आयुतक जीवित रहूं यह यहां कहा है। यहां केवल दीर्घजीवन प्राप्त करना ही नहीं है, परंतु अपना प्रभुत्व शरीर स्थानीय देवगणोंपर स्थापन करना और मानव समुदायोंको सन्मार्गमें संचालन करना वह मुख्य कर्तव्य बताया है।

मनुष्यकी आयु ८ वर्ष बालपन, २४ वर्ष विद्याध्ययन, ३६ वर्षका गृहस्थधर्मसे रहना, ४८ वर्ष विद्याका अध्यापन करना। (देखो छांदोग्य उपनिषद् २।२२) यहांतक ११६ वर्ष होते हैं, इसके पश्चात् के ८ वर्ष क्षीणताके हैं। इस तरह १२४ या १२५ वर्षोंकी आयु है। इस आयुतक जो कार्य करना और जैसा जीवित रहना है, वह इन मंत्रोंमें दिया है। और देखिये इस जीवनमें किन किन शक्तियोंका साधन करना चाहिये—

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च

श्रोत्रं च पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥

अथर्व० १२।५।७-१०

मनुष्यको अपने जीवनमें ये ३४ शक्तियां प्राप्त करनी चाहिये। मनुष्यकी ये शक्तियाँ हैं। इनसे मनुष्य समर्थ बनता है, श्रेष्ठ होता है, पूर्ण पुरुष होता है। अब देखिये इनसे किनका बोध होता है—

१ ओजः— शरीरकी स्थूलशक्ति, जिस शक्तिसे मनुष्यको शक्तिमान कहा जाता है,

२ तेजः— तेज, स्फूर्ति, तेजस्विता, देखते ही जिसका दूसरोंपर प्रभुत्व स्थापन होता है,

३ सहः— शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति,

४ बलं— सामर्थ्य, बल, शक्ति,

५ वाक्— वक्तृत्व, वक्तृत्व करनेकी शक्ति, वक्तृत्वसे दूसरोंपर प्रभाव डालनेकी शक्ति,

६ इन्द्रियं- इन्द्रका अर्थ आत्मा है, उसका सामर्थ्य, आत्मिक सामर्थ्य,

७ श्रीः- शोभा, धन, ऐश्वर्य,

८ धर्म- धर्म, मानव धर्म, चतुर्विध पुरुषार्थका साधन जिससे होता है,

९ ब्रह्म- ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, शुद्ध सत्यज्ञान,

१० क्षत्रं- शौर्य, क्षात्रबल, शत्रुसे अपना संरक्षण करनेका सामर्थ्य, युद्ध करनेकी शक्ति,

११ राष्ट्रं- राष्ट्र, जिसमें ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी तथा वन्य ये लोग सामंजस्यसे रहते हैं, राष्ट्रीयत्वसे बंधा हुआ मानवोंका समाज,

१२ विशः- प्रजाजन, जनता, व्यापार करनेवाले वैश्य लोग, दूर दूरके देशमें जाकर व्यापार करनेवाले व्यापारी आदि,

१३ त्विषिः- सौंदर्य बढानेवाला तेज, चमक,

१४ यशः- यश, यशस्विता, हाथमें लिया कार्य उत्तम रीतिसे समाप्त करनेसे जो कृतकारिता प्राप्त होती है,

१५ वर्चः- आध्यात्मिक तेज,

१६ द्रविणं- धन, द्रव्य, पदार्थोंकी विपुलता,

१७ आयुः- पूर्ण दीर्घ आयु, दीर्घ जीवन

१८ रूपं- सुरूपता, सौंदर्य, उत्तम रूपसे युक्त होना,

१९ नाम— चारों दिशाओंमें नामका प्रभाव होना,

२० कीर्तिं— चारों ओर कीर्तिका प्रसार होना,

२१ प्राणः— प्राणका बल शरीरमें रहना,

२२ अपानः— अपानका कार्य ठीक रीतिसे शरीरमें होना,

२३ चक्षुः— आंखकी दृष्टि अच्छी अवस्थामें शरीरमें रहनी,

२४ श्रोत्रं— कानोंकी श्रवण शक्ति अच्छी अवस्थामें रहनी,

२५ पयः— गौका दूध, दही, मक्खन; घी आदि पदार्थ विपुल प्रमाणमें अपने पास रहने,

२६ रसः— फल आदिकोंके रसोंका अपने पास होना,

२७ अन्नं-अन्न, खाने योग्य पदार्थोंका अपने पास होना,

२८ अन्नाद्यं— खानपानकी वस्तुओंका अपने पास होना,

२९ ऋतं- सरल स्वभाव, जिसमें छलकपट नहीं ऐसा सीधा स्वभाव और सीधा वर्ताव,

३० सत्यं- सत्यका पालन,

३१ इष्टं- इष्ट, इष्ट श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त करनेका अनुष्ठान योग्य पद्धतिसे होना, यज्ञ आदिको करना,

३२ पूर्तं- तालाब, कूप, घाट, मन्दिर, धर्मशाला, पाठशाला आदिका लोकोपकारके लिये निर्माण करना,

३३ प्रजा— संतति, पुत्रपौत्र आदिका होना,

३४ पशवः- गौवें, घोडे आदिका अपने पास होना,

यह मनुष्य प्राप्त करके अपने आपको धन्य मानता है। मनुष्यको इसलिये इनको प्राप्त करना उचित है। इनको प्राप्त करना और जो अपनी शक्ति बनेगी उस शक्तिका विनियोग जनताकी भलाई करनेके कार्योंमें करना चाहिये। इष्ट और पूर्त ये दो अनुष्ठान जनताकी भलाईके लिये हैं। तालाब, कूंए, धर्मशाला, मंदिर, नदीके घाट आदिका बनाना जनताके उपयोगी है यह तो सब जानते ही हैं, परंतु यज्ञ यागके विषयमें लोगोंमें संदेह रहता है। यज्ञके विषयमें गोपथ ब्राह्मणमें कहा है कि-

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते ।
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते । गो. ब्रा.

'ऋतुओंके संधिकालमें रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये ऋतु संधिमें यज्ञ किये जाते हैं।' अर्थात् रोग दूर करना

यह यज्ञका एक कार्य जनताके उपयोगके लिये है। वायु शुद्ध करके यज्ञ रोगोंको दूर करता है। इसके अतिरिक्त लोगोंका संगठन करना, जनतामें ज्ञानका प्रसार करना आदि कार्य यज्ञसे होते हैं। मनुष्यको ये यज्ञ करने ही चाहिये, अर्थात् सर्वजनोंके हितके कार्य करने ही चाहिये। इस दृष्टिसे यह ३४ सत्योंका यह कार्यक्रम किस तरह व्यक्ति और समाजका हित करता है, यह देखने योग्य है। इस तरहसे मानवी उन्नतिकी बारीकसे बारीक बातोंका दिग्दर्शन वेद करता है। और देखिये–

सर्वांगपूर्ण होना

अयुतोऽहं, अयुतो म आत्मा, अयुतं मे चक्षुः, अयुतं मे श्रोत्रं, अयुतो मे प्राणः, अयुतो मे अपानः, अयुतो मे व्यानः, अयुतोऽहं सर्वः ॥

अथर्व० १९।५१

(अहं अयुतः) मैं सर्वांगसे संपूर्ण हूं अर्थात् मैं अटूट, अखंडित, दोष रहित, पूर्ण हूं, (मे आत्मा अयुतः) मेरा आत्मा पूर्ण है, इसमें किसी तरह न्यूनता हीनता आदि दोष नहीं हैं, मेरे चक्षु, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान परिपूर्ण जैसे चाहिये वैसे गुणसंपन्न हैं, उनमें हीनत्व आदि दोष बिलकुल नहीं हैं।

(अहं सर्व अयुतः) मैं सबका सब पूर्ण हूं, निर्दोष हूं, सर्वांग संपूर्ण हूं। यहां ' अयुत ' पद बडा महत्त्वका है, ' पूर्ण, निर्दोष, अहिंसित, अविभक्त, उपद्रवरहित ' ऐसा इसका भाव है। मनुष्यकी जो शक्तियां हैं वे सबकी सब शक्तियां पूर्णताको प्राप्त हों, किसी तरह दूसरेसे उपद्रव न होने योग्य अवस्थामें हों। हमारी सब शक्तियां ऐसी हों कि जिनको किसी तरहसे दूसरोंसे उपद्रव न पहुंचे। वे हमारे पास अक्षुण्ण स्थितिमें रहें, उपद्रवरहित अवस्थामें रहें। पूर्ण विकसित उन्नत रूपसे रहें।

तैंतीस वीर्योंकी प्राप्ति

पूर्व स्थानमें ३४ वीर्योंका वर्णन एक मंत्रद्वारा किया है। उसीमें ३३ वीर्य हैं और ३४ वां वीर्य जीवात्मा हैं। इस विषयमें एक सूक्त देखिये–

इदं वर्चो अग्निना दत्तं आगन् भगो यशः सह ओजो वयो बलम्। त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्याग्निः प्रददातु मे ॥ १ ॥ वर्च आधेहि मे तन्वाँ सह ओजो वयो बलम्। इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥ ऊर्जे त्वा बलाय त्वा ओजसे सहसे त्वा। अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥ अथर्व० १९।३७

' (इदं वर्चः) यह तेज अग्निसे प्राप्त हुआ है, वह मेरे पास आगया है, यह (भगः) तेजस्विता बढाता है, (यशः) यश अथवा कीर्ति देता है, (सहः) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य बढाता है, (ओजः) सामर्थ्य, शक्ति, बल और (वयः) दीर्घ आयु देता है। जो तैंतीस (वीर्याणि) वीर्य हैं, शक्तियां हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं, मिलते हैं ॥ (मे तन्वां वर्चः आधेहि) मेरे शरीरमें तेज स्थापित हो, इसके साथ दीर्घायु, बल, सामर्थ्य और शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति मेरे शरीरमें रहे। (इन्द्राय) आत्माके लिये (कर्मणे) कर्म शक्तिके लिये, (वीर्याय) पराक्रम करनेकी शक्ति बढानेके लिये, (शतशारदाय) और सौ वर्षकी दीर्घायुके लिये मैं इसका धारण करता हूं ॥ (ऊर्जे) तेजस्विताकी शक्ति, (बलाय) शारीरिक शक्ति, (ओजसे) ओजः सामर्थ्य, (सहसे) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य (अभिभूयाय) दुष्टोंका दमन करनेका सामर्थ्य बढानेके लिये, (राष्ट्र भृत्याय) राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये और सौ वर्षोंकी दीर्घायुके लिये (पर्यूहामि) मैं इस पदार्थका धारण करता हूं। '

राष्ट्र सेवाके लिये जीवनसमर्पण

किसी पदार्थका धारण करनेके लिये, शरीरपर वस्त्र, आभूषण आदिको धारण करनेके लिये ये मंत्र बोले जाते हैं। इनमें दीर्घ जीवनका उल्लेख है, राष्ट्रसेवा (राष्ट्रभृत्य)का स्पष्ट उल्लेख है। बाकी अनेक गुण हैं और तैंतीस वीर्य स्पष्ट शब्दोंमें कहे हैं। इन तैंतीस वीर्योंको इससे पूर्व बताया ही है। राष्ट्रसेवा करनेके लिये ही मेरे भोग, मेरे ऐश्वर्य और सामर्थ्य हैं, यह इन मंत्रोंका कथन सबको देखने योग्य है। राष्ट्रकी सेवामें जनसेवा आगयी है। वेदमें राष्ट्र सेवाका उपदेश इस तरह स्पष्ट रीतिसे कहा है। व्यक्तिके शरीरमें जो तैंतीस वीर्योंको बढाना है, वह राष्ट्रसेवाके लिये है, यह उपदेश यहां स्पष्ट रीतिसे ध्यानमें आने योग्य रीतिसे कहा है।

राष्ट्र सेवाके लिये जीवन समर्पण करनेका यहां उपदेश है । मैं अपने (तन्वां) शरीरमें जो सामर्थ्य बढा रहा हूं वह किस लिये बढा रहा हूं ? अपने भोग बढानेके लिये मैं अपने सामर्थ्य नहीं बढा रहा हूं, इतना ही नहीं, परन्तु अन्न वस्त्र आदि जो भोग मैं अपने पास रखता हूं वे भी इसीलिये हैं कि उनसे सामर्थ्यवान बनकर मैं राष्ट्रकी सेवा अच्छी तरह कर सकूं। अर्थात् मनुष्यके पास भोग इसलिये होने चाहिये, कि जिनसे वह मनुष्य अपने अन्दर तैंतीस वीर्य बढावे और राष्ट्र सेवाके लिये उनका उपयोग करे। राष्ट्रसेवा, सर्वजनहित, जनताका कल्याण आदिका भाव एक जैसा समान ही है । व्यक्तिके जीवनका यज्ञ समष्टिकी भलाईके लिये होना चाहिये इस व्यक्तिकी कृतकृत्यता है ।

मनका छिद्र बुझाओ

यहांतक व्यक्तिमें गुणोंका उत्कर्ष करनेके विषयमें वेदके आदेश हमने देखे अब मन आदिकी आन्तरिक शक्तियोंके उत्कर्षके विषयमें वेदके आदेश देखिये—

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम । विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः संदधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥ मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन । सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वं उपहूतोऽहं सुमेधा वर्चसी ॥ २ ॥ मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः । शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३॥ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥ अथर्व० १९।४०

'(मनसः छिद्रं) जो मेरे मनका छिद्र है, जो दोष मेरे मनमें है, जो मेरी (वाचः) वाणीमें छिद्र है, जो मेरी वाणीमें दोष है । और जो दोष (सरस्वती मन्युमन्तं जगाम) सरस्वती विद्यादेवी क्रोधवालेके साथ मिलनेसे उत्पन्न होता है, ये सब दोष सब देवोंके साथ मिलकर रहनेवाला (बृहस्पतिः) ज्ञानपति ज्ञानी (संदधातु) दूर करे, मिटा देवे । ज्ञानी अपने ज्ञानके द्वारा इन दोषोंको दूर करे ।। हे जलो ! (नः मेधां मा) मेरी मेधाको विनष्ट न करो और (नः ब्रह्म) हमारे ज्ञानको भी (मा प्रमथिष्टन) क्षीण न करो । (सुष्यदा) सुख देती हुई तुम (स्यन्दध्वं) बहती हुई आओ, इससे (अहं सुमेधा वर्चसी) मैं उत्तम मेधावाला और तेजस्वी हो जाऊं ॥ (नः मेधां) हमारी मेधाको हमारी (दीक्षां) दक्षताको और हमारा जो तप है उस तपको (मा हिंसिष्टं) हानि न पहुंचाओ । ये जलरूपी माताएं हमारे लिये कल्याण करनेवाली बनें, और ये जलरूपी माताएं हमारी आयुका कल्याण करें । हे अश्विदेवो ! (अस्मे) हमारे लिये (तां इषं रासतां) उस अन्नको देदो कि जो (ज्योतिष्मती पीपरत्) तेजस्वितासे पूर्ण कर दे और (तमः तिरः) अन्धकारको दूर करे ।'

अपने अन्दरके दोषोंको दूर करनेका अनुष्ठान करनेका उपदेश यहां इस सूक्तके मंत्रोंने दिया है । मेरे मनमें और वाणीमें कोई छिद्र न हों, कोई दोष न हों । मेरा मन निर्दोष हो और मेरी वाणी भी दोषरहित हो । इसी तरह मेरी अन्यान्य इन्द्रियां दोषरहित हों, निर्दोष और पवित्र हों । प्रत्येक इन्द्रियमें दोष होते हैं । यहां इस मंत्रमें मन और वाणी इन दोनोंका ही उल्लेख है । परंतु अन्य सब इन्द्रियों और अवयवोंमें किसी तरहसे दोष न हो यही यहां सूचित किया है ।

ये दोष क्यों होते हैं ? सरस्वती क्रोधवालेके पास जाती है । विद्या क्रोधसे युक्त होती है । यह भी उपलक्षण ही है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छः शत्रु हैं, प्रत्येक शत्रु मनपर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है, और प्रमाद कराता है । सरस्वती विद्या है, ज्ञान है । यह ज्ञान एक बडी शक्ति है । इस ज्ञानरूप शक्तिके साथ काम क्रोध लोभ मोह मद और मत्सरका संबंध हुआ तो हमारे इंद्रियोंमें छिद्र होते हैं; दोष होते हैं । इससे अनेक प्रकारके प्रमाद होते हैं ।

यहां मंत्रमें 'मन्यु' पद है यह क्रोधका वाचक है, यह अति उत्साहका भी वाचक होता है । अत्यंत प्रबल उत्साहसे भी प्रमाद होते हैं, इसलिये सदा सावध और दक्ष रहना चाहिये ।

मनुष्यकी पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, पांच कर्मेन्द्रियां हैं, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये आन्तरिक इंद्रियां हैं । इनके साथ काम, क्रोध आदि छ शत्रु मिलकर जो अनर्थ करते हैं, उनकी कल्पना पाठक करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि यह शत्रुदल कितना बडा है । इन सबके साथ हमारा संबंध है । इनका आक्रमण हो जानेपर इनको पराभूत करके अपना विजय प्राप्त करना चाहिये । यह किस तरह हो सकेगा ?

*

'देवैः संविदानः बृहस्पतिः' सब दिव्य शक्तियोंके साथ मिला हुआ ज्ञानपति इस युद्धमें अपनेको विजय प्राप्त करके देता है। सब दिव्य भावोंके साथ ज्ञानी रहे, ज्ञानी अपने अन्दर दिव्यभाव बढावे, आसुर भावको दूर करे, तो ही इसका विजय हो सकता है। अपनी मेधा, अपना ज्ञान यह सब दिव्यभावसे युक्त होना चाहिये। शत्रु-भावके अधीन नहीं होना चाहिये।

यहां एक बडा भारी आत्मशुद्धिके अनुष्ठानका संकेत है। जिस तरह जल प्रवाह निर्मल रहा, तो वह सुखदायी होता है, और वह मलिन हुआ तो वही रोग उत्पन्न करता है, इसी तरह हमारे मन और हमारी वाणीके प्रवाह शुद्ध स्वच्छ और निर्मल रूपमें बहते रहें, उनको कामक्रोधके दोष न मिलें। यह है अपनी पवित्रताका अनुष्ठान, जो साधकोंको करना चाहिये।

कामक्रोध सर्वथा बुरे नहीं हैं। उनके उपयोगसे वे बुरे या भले हो जाते हैं। मै ईश्वरका भजन करूंगा यह कामना अच्छी है, दुष्ट भावोंपर क्रोध करके उनको दूर करना योग्य है, मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो इस विषयका लोभ लाभदायक है। परम श्रेष्ठ ज्ञानका गर्व हुआ तो वह तापदायक नहीं होगा। इस रीतिसे ये छः शत्रु भी मित्रवत् व्यवहार करते हैं। स्वयं दक्षतासे अपने आचार व्यवहारका निरीक्षण करनेसे अपना सुधार करनेके लिये क्या करना चाहिये इसका ज्ञान हो जाता है। इस तरहके अनुष्ठानसे मन आदिके छिद्र दूर हो सकते हैं और साधक पवित्र हो सकता है।

हिरण्य धारणसे बलकी वृद्धि

अपने बल और ओजकी वृद्धि करनेके लिये कई उपाय वेदमें कहे हैं। उनमें शरीरपर सुवर्णका धारण करना यह भी एक उपाय है देखिये-

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यं अमृतं दध्रे अधि मर्त्येषु। य एनद्वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥ यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे। तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा संसृज्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२॥ आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च। यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः। इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥ अथर्व० १९।२६

'(अग्नेः प्रजातं हिरण्यं) अग्निसे शुद्ध हुआ सुवर्ण (मर्त्येषु अमृतं अधि दध्रे) मनुष्योंमें अमृतको धारण करता है अर्थात् अमरपन देता है, आयुको बढाता है। जो इस तत्त्वको जानता है वह इस सोनेका अपने शरीरपर धारण करनेके लिये योग्य होता है। (यः निभर्ति) जो इस सोनेको अपने शरीरपर धारण करता है वह (जरा मृत्युः भवति) जीर्ण अवस्थाके पश्चात् मृत्युको प्राप्त करता है। अर्थात् जराके पूर्व वह मरता नहीं ॥ जो (हिरण्यं) सोना है वह (सूर्येण सुवर्णं) सूर्यसे प्राप्त हुआ सुवर्ण है। इसको प्रजावाले मानवोंने पहिले प्राप्त किया था। वह (चन्द्रं) चमकनेवाला सुवर्ण (त्वा वर्चसा सृजतु) तुझे तेजस्वी बनावे। जो इस सुवर्णको (बिभर्ति) धारण करता है वह दीर्घायु होता है ॥ आयु, तेज, ओज और बलके लिये सुवर्णके आभूषणको धारण करता है, इससे लोगोंमें तू सुवर्णके समान तेजस्वी बन ॥ वरुण राजा, (बृहस्पतिः) ज्ञानी गुरु तथा (इन्द्र वृत्रहा वेद) वृत्रका नाश करनेवाला इन्द्र भी इस तत्त्वको जानता है। यह सुवर्णका आभूषण तेरी आयु बढानेवाला और तेज बढानेवाला होवे।'

यहां इस सूक्तमें कहा है कि, सुवर्ण अग्निमें शुद्ध करनेके पश्चात शरीरपर उसके आभूषण करके धारण किये जांय तो आयु बढती है। यह सुवर्ण (अ-मृतं) मृत्युको दूर करनेवाला है। (जरा-मृत्युः) जराके पश्चात् मृत्युको लानेवाला है। १६ वर्षसे ७० वर्षतक तारुण्य है।

आषोडशात् सप्ततिवर्षपर्यंतं यौवनम्।

वात्स्यायन सूत्र

सोलह वर्षसे सत्तर वर्षतक यौवन अर्थात् तारुण्य है। उसके पश्चात् ३० वर्षकी परिहाणी अवस्था है उसके पश्चात् जरा अवस्था आती है और जराके पश्चात् मृत्युका समय आना योग्य है। जैसा सूर्य सुवर्णका गोला ही है। वैसा तेजस्वी सुवर्ण चाहिये। यह शुद्ध सुवर्ण ही होना चाहिये। अग्निमें तपकर शुद्ध किया हुआ यह सुवर्ण शरीरपर धारण करनेके लिये योग्य है।

शरीरपर सुवर्णका धारण करनेसे शरीरमें रुधिरका प्रवाह अच्छी तरह चलने लगता है। यह तो कोई करके भी देख सकता है। रत्नोंका धारण करनेसे भी शरीरपर इष्ट परिणाम होता है। जो आयुष्य वृद्धिके लिये हितकारी होता है।

इस सूक्तमें 'आयुषे, वर्चसे, ओजसे, बलाय' ये शब्द हैं। सुवर्णका धारण करनेसे ये प्राप्त होते हैं। ये सब रक्तका प्रवाह शरीरमें उत्तम रीतिसे होनेके कारण प्राप्त होते हैं। सुवर्णका धारण करनेमें सुवर्ण शरीरकी चमडीके साथ लगना चाहिये। गलेमें जो माला होती है वैसी माला रही तो अच्छा है। वह हिलती रहनेसे अधिक अच्छा परिणाम शरीरपर होता है। स्त्रियां आभूषण धारण करती हैं, उनसे उनको लाभ होता है। इनमें मणिरत्न रहे तो लाभका प्रमाण अधिक रहता है।

जन्मसे ही स्त्रियोंमें जीवन शक्ति अधिक रहती है इसकी योजना ईश्वरने ही अपनी अद्भुत आयोजनासे की है। जन्मके समयकी मृत्युमें अथवा बालमृत्युमें पुरुषके मृत्युका प्रमाण अधिक होता है। इसका कारण यही है कि पुरुष शरीरमें जीवनतत्व कम और स्त्री शरीरमें जीवनतत्व अधिक होता है। क्योंकि स्त्रीको प्रसूति करनी होती है और प्रसूतिके समय रक्त प्रवाह अधिक होनेपर भी स्त्रीका देहान्त नहीं हो सकता। इतना रुधिर पुरुषके शरीरसे चला जाय, तो पुरुष जीवित नहीं रहेगा। और प्रसूतिके अवसर स्त्रीके जीवनमें दस पांच तो होते ही हैं। स्त्रियोंके शरीरपर सुवर्णके आभूषण रखनेका कारण इस सूक्तमें कहा है कि 'अमृतं हिरण्यं' सुवर्ण अमृतत्व देता है। दीर्घायु करता है। तेज, ओज, बल और आयु बढाता है। शरीरके साथ सुवर्ण रहा और शरीरसे लगता रहा तो अल्प प्रमाणमें वह शरीरमें जाता है, वह भी लाभकारक है।

इस तरह शरीरका सत्त्व बढानेके लिये सुवर्ण धारण शरीरपर करनेका आदेश वेद देता है।

शरीरकी पुष्टि और दीर्घायु

शरीर हृष्टपुष्ट और दीर्घजीवनवाला करनेके विषयमें निम्न स्थानमें लिखा सूक्त कुछ विशेष निर्देश करता है वे निर्देश अब देखिये–

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्। तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥ परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयाँ ज्योक्क्षत्रेऽधि जागरत् ॥ २ ॥ परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक् च श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥ परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः। बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ ४ ॥ जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ। शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ५ ॥ परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ। शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥ ६ ॥ योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखायमिन्द्रमूतये ॥ ७ ॥ हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व। तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥ अथर्व० १९।२४

'जिससे सब देवोंने सविता देवको वस्त्र पहनाया था, हे ब्रह्मणस्पते! उसी वस्त्रसे इस पुरुषको (राष्ट्राय) राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये ढांपो।' अर्थात् यह मनुष्य अच्छी तरह राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये योग्य हो जाय, सामर्थ्यवान हो जाय, इसलिये यह मनुष्य इस वस्त्रको पहने। इस वस्त्रका धारण करे। वस्त्रका धारण करनेके लिये मनुष्यके मनमें राष्ट्रकी सेवा करनेका भाव रहना योग्य है। मैं इस वस्त्रको पहनूं और अपने राष्ट्रकी सेवा करूं।

(इमं इन्द्रं) इस राजाको, इस राष्ट्रके शासकको, आयुके लिये, शत्रुका (सहे) पराभव करनेके लिये, क्षात्रबल अर्थात् शौर्य वीर्यके लिये यह वस्त्र पहनाओ। इस वस्त्रको पहनकर यह वस्त्र इसको (जरसे नयान्) बुढापेतक पहुंचावे, बडी देरतक (क्षत्रे अधिजागरत्) यह पुरुष क्षात्रसामर्थ्यमें रहता हुआ सावधान रहे। प्रमाद न करे। सावध रहकर राष्ट्रकी सेवा करता रहे॥ यह राजा या राष्ट्रका सेवक इस वस्त्रको पहने अथवा इस भोगको प्राप्त करे और इससे इसको दीर्घायु प्राप्त हो, शत्रुका पराभव करनेका बल इसमें बढे, वृद्धावस्थातक यह उत्तम राष्ट्र सेवाके कार्य दक्षताके साथ करता रहे और शौर्यवीर्य युक्त क्षात्रबल बढाकर राष्ट्रकी सेवा करता रहे।

इस (सोमं) सोम सदृश, चन्द्रमाके समान, आनन्द-दायक राजाको दीर्घायु प्राप्त हो, और (महे श्रोत्राय) बडे श्रवण करनेके सामर्थ्यको यह प्राप्त हो, यह वृद्धावस्थातक जीवित रहे और इसकी श्रवण करनेकी शक्तिके साथ यह सावधान रहे। राजा, राष्ट्रके बडे पुरुष अथवा महात्माको लोगोंकी बातें श्रवण करनेका अभ्यास रहना चाहिये। लोग विश्वासके साथ यहां इसके समीप आजांय और इसको अपने कष्ट की बातें सुनावें। यह उन सब बातोंको सुनकर उनके कष्ट दूर करे और इस रीतिसे राष्ट्रकी सेवा आयुभर करता रहे।

बृहस्पतिने यह वस्त्र सोम राजाको पहनाया था और सोमराजाने राष्ट्रकी सेवा की थी। वही यह वस्त्र है, यह इस पुरुषको ज्ञानी पहनावे, वह पुरुष जराके पश्चात् मृत्युको अर्थात् दीर्घ आयुको प्राप्त करे और अपनी आयुभर यह राष्ट्रकी सेवा सावधानतांके साथ करे॥

यह (वासः परिधत्स्व) वस्त्र पहने, (जरां सुगच्छ) वृद्ध अवस्थातक प्राप्त हो, (गृष्टीनां अभिशस्तिपा भव) गौवोंका उत्तम रीतिसे संरक्षण करनेवाला हो जाए। सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करे और धन तथा पुष्टि प्राप्त करे।

(स्वस्तये) कल्याण होनेके लिये इस वस्त्रको पहनो, (वापीनां अभिशस्तिपा) दूधसे भरपूर भरे हुए कूओंके समान जो उत्तम दुधारू गौवें हैं उनका संरक्षण करो। सौ वर्षका दीर्घ जीवन प्राप्त करो, और (जीवन्) दीर्घजीवनको प्राप्त करके उत्तम धनोंका बटवारा करो अर्थात् अपने धनको राष्ट्रके हित करनेके लिये बांट दो॥

(योगे योगे) प्रत्येक उद्योगमें और (वाजे वाजे) प्रत्येक युद्धमें (तवस्-तरं) बडे शक्तिमान वीरको हम अपने सहायतार्थ बुलाते हैं। वह आये और हमारा संरक्षण करें॥ जहां कोई बडा कार्य करना हो अथवा बडे शत्रुके साथ युद्ध छिड गया हो तो वहां सहायतार्थ ऐसे वीरोंको बुलाना चाहिये कि जो बडे शक्तिशाली हैं और मित्रवत् आचरण करनेवाले हों।

हे राष्ट्रकी सेवा करनेवाले वीर! तू (हिरण्यवर्णः) सुवर्णके समान तेजस्वी, (अजरः) जरारहित, (सुवीरः) उत्तम वीर, (जरा-मृत्युः) जराके पश्चात् मृत्युको प्राप्त होनेवाला होकर (प्रजया सं विशस्व) प्रजाके साथ मिल-जुलकर रह। प्रजाका हित करनेके कार्य कर। यही तत्त्व अग्नि सोम बृहस्पति सविता और इन्द्रने कहा है। अपने आचरणसे यही तत्त्व दिखाया है।

इस सूक्तमें यह कहा है कि राष्ट्रके स्वयंसेवक गण अथवा राष्ट्रसेवा करनेवाले वीर वस्त्र आदि पहने और अपने अन्दरकी शक्तियोंको बढावे, दीर्घायु प्राप्त करे, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य प्राप्त करे, क्षात्रबल बढावे, अपनी दर्शन श्रवण आदिकी शक्ति बढावें, अपने पास धन, पोषण शक्ति आदि बढावे और इन सब सामर्थ्योंसे वह अपने राष्ट्रकी सेवा करे। राष्ट्रमें गौओंका संरक्षण करें, अपने धनको राष्ट्रमें बांट दे, राष्ट्रहितके कार्यके लिये अपने पासके धनको और अपनी शक्तियोंको समर्पण करे। प्रजाकी बातें सुने, प्रजाके साथ मिलकर रहे, प्रजामें अपने विषयमें विश्वास उत्पन्न करे और प्रजाका सब प्रकारसे जो हित करना आवश्यक है वह सब करता रहे। सदा सावधान रहकर राष्ट्रका हित करनेके लिये तत्पर रहे।

यहांतक हमने मानवी देहकी अपूर्वता देखी और उसकी सार्थकता होनेके लिये उसका अर्पण राष्ट्रसेवामें होना चाहिये यह वेदका आशय यहां स्पष्ट हुआ। अब हम शरीरके मुख्य मुख्य अवयवोंके विषयमें वेदका कहना क्या है वह देखना चाहते हैं। प्रथम सिरके विषयमें देखिये, क्योंकि ' सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानं ' सब अंगोंमें सिर मुख्य है अतः उस सिरके विषयमें वेदमें क्या कहा है सो देखिये–

सिर देवोंका कोश है

सिरको वेदने ' देवताओंका कोश ' अर्थात् खजाना कहा है, इतना इस सिरका महत्व माना है–

तत् वा अथर्वणः शिरः देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥
अथर्व० १०।२।२७

' अथर्वा योगीका जो सिर है, वह अच्छी तरह बंद किया हुआ देवोंका कोश है, उसका संरक्षण प्राण शिर अन्न और मन करते हैं। ' अ-थर्वा नाम योगीका है, जो अ-चंचल हुआ है, जिसका मन स्थिर हुआ है वह अथर्वा है। ऐसे योगीका सिर देवोंका कोश है। प्रत्येक मनुष्यका शिर ऐसा ही देवकोश है, योगीने उसको अपने स्वाधीन किया होता है और अन्य लोग उसको इतस्ततः फेंक देते हैं, इसलिये अन्योंका यह कोश बिखरा रहता है।

अन्न, सिर, प्राण और मन इस देवकोशका संरक्षण करते हैं। योग्य अन्न खानेसे सिर सामर्थ्यशाली होता है, प्राणायाम करनेसे सिर ठीक कार्य करता है और मनके उत्तम विचार होनेसे सिर सामर्थ्ययुक्त बनता है। और देखो–

मूर्धानमस्य संसीव्य अथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥
अथर्व० १०।२।२६

'मस्तिष्क और हृदय इन दोनोंको अथर्वा योगीने इकट्ठा सीया और मस्तिष्कके तथा सिरके ऊपर पवमान प्राणको भेज दिया।' यहां एक बडा भारी योग कहा है वह है मस्तिष्क और हृदयको एक कार्यमें प्रेरित करना। सामंजस्य योग इसको कह सकते हैं। मस्तिष्क ज्ञानग्रहण करके तर्क करता है और हृदय भक्ति करता है। तर्क प्रधान होनेसे तार्किक नास्तिक बनते हैं और भक्तिप्रधान होनेसे भक्त भोले होते हैं। मस्तिष्कका तर्क और हृदयकी भक्ति एक कार्यमें मिलकर कार्य करने लग जाय, तो वही दिव्यभाव प्रकट हो सकता है। इसलिये इस मंत्रने कहा है कि मस्तक और हृदयको सी दो और प्राणको प्राणायामके अभ्याससे स्वाधीन करके सिरके भी ऊपर भेजो। तर्क और भक्तिका सामंजस्य करनेका यह योग मानवोंकी सच्ची आध्यात्मिक उन्नति करनेवाला है।

यस्य शिरो वैश्वानरः चक्षुरंगिरसोऽभवन्।
अंगानि यस्य यातवः स्कंभं तं ब्रूहि कतमः
स्विदेव सः॥ अथर्व० १०।७।१८

'जिसका सिर वैश्वानर है, अंगिरस आंख हुए हैं, जिसके सब अंग गतियुक्त हैं, वही सर्वाधार है और वही सुखदायी है।' यहां सिर वैश्वानर कहा है, विश्वका नेता सिर है। सिरसे ही सब शरीरका नेतृत्व होता है। अंगिरस भी तेजः पदार्थ ही हैं, वे नेत्र बने हैं, इस विषयमें यह मंत्र देखिये...

बृहस्पतिः शिरः, ब्रह्ममुखं, द्यावापृथिवी श्रोत्रे,
सूर्याचन्द्रमसौ अक्षिणी, सप्त ऋषयः प्राणापानाः।
अथर्व० ११।३।१

'बृहस्पति सिर है, ब्रह्म मुख है, द्यावापृथिवी अर्थात् दिशाएं कान हैं, सूर्यचन्द्र आंख हैं और प्राण सप्तऋषि हैं।'

इस तरह यह सिर सब देवोंका कोश है, यहां देव ही रहे हैं। देवोंने अपनी दिव्य शक्तियां यहां रखी हैं। यह मनुष्यके सिरका महत्त्व है। और यह भी देखिये–

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान् त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥१३॥
ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम्।
पृष्ठीर्वंजह्रे पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः॥ १४॥
शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्महीं॥१५॥
अथर्व० ११।८।१३-१५

'सबको जीवनसे सींचनेवाले वे देव हैं, जो सब प्रकारके शरीर बनानेके संभारोंको जीवनके जलसे सींचते हैं। सब मर्त्य पदार्थोंको जीवनके जलसे सींचकर देव इस मानवी शरीरमें घुसे हैं॥ जांघें, पांव, गोडोंके जोड, सिर, हाथ, मुख, पीठकी हड्डियाँ, चूचुक और पासे इन सबको किस ऋषिने एकत्रित किया? सिर, हाथ, मुख, जिह्वा, गर्दन और हड्डियां इन सबको चमडेसे ढककर किस मेल करनेवाली बडी शक्तिने इनका इस शरीरमें मेल किया?'

यहां कहा है कि 'संधा' अर्थात् सम्यक् रीतिसे धारण करनेवाली बडी शक्ति है जो शरीरमें विविध दैवीशक्तियोंको एकत्रित करके धारण करती है, जिससे यह शरीर बनता है। यह शरीर अनेक दैवी शक्तियोंका एक उत्तम संमेलन ही है। शरीरके एक एक इन्द्रियोंमें एक एक दैवी शक्ति है, शक्तिका अंश है। इन विभिन्न दैवी शक्तियोंको इस शरीरमें एकत्र बांधकर रखनेवाली 'संधा' महाशक्ति है, इसने यह शरीर धारण किया है। इस शरीरमें सब पदार्थ मरण धर्मवाले हैं, इसी शक्तिने जीवनरससे उनको सिंचित किया है और इससे वे सब मिलकर जीवन युक्त हुए हैं। ऐसी प्रभावशाली वह शक्ति है। और भी एक विचार है–

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ
नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य
मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम्॥
अथर्व. १०।२।६

'सिरमें किसने सात सुराख खोदकर बनाये हैं? दो कान, दो नाक, दो आंख और एक मुख ये सात सुराख किसने इस सिरमें किये हैं। जिनकी विजयकी महिमामें

चतुष्पाद और द्विपाद अपने अपने मार्गसे चल रहे हैं।' सिरमें ये सात सुराख करनेवाला कितना चतुर कारीगर होगा, इसकी कारीगरीकी महिमाका वर्णन किस तरह किया जाय। इन सात सुराखोंद्वारा जो अद्भुत कार्य हो रहे हैं, उनके विजयकी जो महिमा है उसीसे द्विपाद और चतुष्पाद अपने अपने कार्य कर रहे हैं।

मनुष्य जो अद्भुत और आश्चर्यकारक कर्म कर रहा है वह इनकी महिमासे ही है। ऐसी सुव्यवस्था इस शरीरमें और विशेषतः मानवके सिरमें की गयी है यह एक अत्यंत उत्कृष्ट कारीगरी है। और भी इस विषयमें वेद कहता है-

ब्रह्म अस्य शीर्षम्। अथर्व० ४।३४।१
ब्रह्मणा शिरः। ऋ० ३।५१।१२
सत्यं च ऋतं च चक्षुषी, विश्वं सत्यं, श्रद्धा प्राणः
विराट् शिरः। एष वा अपरिमितो यज्ञः।
अथर्व० ९।५।२१
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
ऋ० १०।९०।१४; अथर्व. १९।६।७

'ब्रह्म अर्थात् ज्ञान इसका सिर है, द्युलोक ही सिर है। सत्य और ऋत ये आंख हैं, इसका सब जीवन ही सत्य है, श्रद्धा प्राण है, विराट् इसका सिर है। यह शरीररूपी अपरिमित यज्ञ है।' इस यज्ञकी महिमाका वर्णन कोई कर नहीं सकता ऐसा यज्ञ यहां इस शरीरमें चल रहा है। इस शरीरमें यह सौ वर्षोंतक चलनेवाला यज्ञ है। 'शतक्रतु' यही मानव है। सौ वर्षतक जीवित रहकर सौ यज्ञ यह करता है। इन्द्र भी यही है। इन्द्र देवोंका राजा यही है, इसकी देवसभा इसी शरीरमें है और प्रत्येक इंद्रियमें देव बैठे हैं जिनका सम्राट् इन्द्र जीवात्मरूपमें इस शरीरमें कार्य कर रहा है।

विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या।
तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम्॥
ऋ० २।१६।२

'इसमें सब प्रकारके वीर्य भरे रहते हैं। शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, महत्त्वका प्रभाव, हाथमें वज्र और सिरमें बुद्धि तथा कर्म करवानेकी शक्ति इसमें रहती है।' सिरमें यह क्रतुकी शक्ति रहती है। मनुष्य इसी शक्तिसे बडे बडे कार्य करता है, इसमें अनेक पराक्रम करनेकी महती शक्ति है जिससे इसका महत्त्व बढता है, यह युद्ध करके शत्रुको परास्त करता है और विजय प्राप्त करता है। इन्द्रके सब पौरुष इस मनुष्यके पौरुष बनते हैं जब इसकी शक्ति विशेष प्रभावशाली बनती है।

यह सिरका वर्णन है और इन मंत्रोंमें मनुष्यके अन्यान्य अवयवोंका भी वर्णन आ गया है। अब सिरका वर्णन करते हुए वेदने सिरपर पगडी रखनेका भी वर्णन किया है-

शिप्राः शीर्षसु विततता हिरण्ययीः॥ ऋ.५।५४।११
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः।
ऋ० ८।७।२५

'सिरपर जरतारीका साफा बंधा रहता है।' ऐसे मंत्रोंमें सिरपर पगडी, साफा अथवा शिरोवेष्टनका उल्लेख है। यह साफा 'हिरण्ययी' जरतारीका होता था, सुन्दर होता था। ऐसा भी यहां कहा है। यहांतक सिरकी दिव्य शक्तियोंका वर्णन हुआ। यह वर्णन देखने योग्य है। और अपने सिरकी शक्ति इस वर्णनसे जाननी चाहिये। मनुष्यमें मुख्य सिर ही है। वेद तो इसको देवकोश कहता है, देवमंदिर और सप्तऋषियोंका आश्रम कहता है। यह महिमा अपने सिरकी है। मनुष्यको उचित है कि वह इस महिमाकी सुरक्षा करे अथवा यह महिमा बढावे।'

शरीरके रोग

शरीरका तथा सिरका यह वर्णन हुआ। परंतु यदि यह मानवी शरीर है, तब तो उसमें दोष भी हो सकते हैं उन दोषों और रोगोंका भी वर्णन वेद कर रहा है देखिये-

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यं अथो पार्ष्ण्यं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जंभयामसि॥
अथर्व० २।३१।४
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते॥
अथर्व० २।३३।१
शीर्षामयमुपहत्यां अक्ष्योस्तन्वोरपः।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करत् दैवं समह वृष्ण्यम्॥
अथर्व० ५।४।१०
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो
रोगमनीनशम्॥ २१।

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्ग-
भेदमशीशमः ॥ २२ ॥ अथर्व० ९।८

शीर्षक्ति शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे
अथर्व० ९।८।१

(१) आन्तडियोंमें होनेवाले, सिरमें होनेवाले और पसलियोंमें होनेवाले क्रिमियोंको, (अवस्कवं) नीचेकी ओर जानेवाले और (वि-अध्वरं) विविध मार्गोंसे पीडा देनेवाले कृमियोंको (दचसा) वचासे हम विनष्ट कर देते हैं।

(२) तेरी आंखोंसे, नासिकाओंसे, कानोंसे, ठोडीसे, सिरसे, मस्तिष्कसे और जिह्वासे तेरे यक्ष्मरोगको मैं दूर करता हूँ।

(३) सिरके रोगको, आंखोंको दुर्बलताको, शरीरके हर-एक रोगको यह कुष्ठ औषधि दूर करती है, निश्चयसे यह दैवीबल देनेवाली कुष्ठ औषधि है।

(४) तेरे पांवोंसे, गोडोंसे, चूतडोंसे, गुह्यभागसे, रीढसे, गर्दनसे और सिरसे तुम्हारे अन्दरके सब रोगोंको मैंने दूर किया है। तेरे सिरके जो कपाल हैं और हृदयको जो दधुक् है और तेरे सिरमें जो पीडा है और अंगों तथा अवयवोंमें जो पीडा है, उस सब प्रकारकी पीडाको मैं दूर करता हूँ।

(५) सिरकी पीडा, सिरका दर्द, कर्णोंकी पीडा, रक्तका कम होना, तथा सब अन्य प्रकारके शिरोरोगोंको हम दूर करते हैं।

इस तरह शिरकी पीडा तथा शरीरके अन्यान्य अवयवोंके दर्दों और दुःखोंको दूर करनेके विषयमें वेदमें अनेक मंत्रोंमें नाना उपाय बताये हैं। वचा वनस्पतिका उपयोग कृमिरोग दूर करनेके लिये किया जाता है, कुष्ठ वनस्पति शरीरको अनेक रोगोंसे बचाती है। सूर्य किरण, जल, तथा अन्यान्य प्रकारकी औषधियां उपयोगमें लाकर शरीर नीरोग और स्वस्थ रखना चाहिये। शरीरसे ही मनुष्यकी उन्नतिका अनुष्ठान होना है, इसलिये शरीरको नीरोग रखना जैसा आवश्यक है वैसा ही शरीरको बलवान तथा कार्यक्षम बनाना भी आवश्यक है। यहांतक हमने देखा कि शरीरको नीरोग बनानेके विषयमें जैसा वेदमंत्रोंने मार्गदर्शन किया है उसी तरह शरीरकी शक्तियां बढानेका और उन शक्तियोंको राष्ट्रसेवामें लगानेका भी उत्तम उपदेश वेदमें हैं।

काले बाल बढें

सिरपर काले बाल बढें इस विषयमें एक मंत्रमें स्पष्ट कहा है—

केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि।
अथर्व० ६।१३७।२-३

'जैसा घास बढता है, उस तरह सिरपर काले बाल बढें।' 'अपलिताः केशाः' (अथर्व० १९।६०) बाल सफेद न हों। काले ही हों ऐसा कहा है। इसीकी पुष्टि इस मंत्रने की है और कहा है कि 'ते शीर्ष्णः परि असिताः केशा वर्धन्तां' तुम्हारे सिरपर काले बाल बढें। श्वेत बाल नहीं चाहिये, परंतु काले बाल सिरपर हों और वे 'नृडा इव' नडोंके समान बढें। काले बालोंसे शरीरका सौंदर्य बढता है वैसा श्वेत बालोंसे नहीं बढता। और शरीरमें सुंदरता रहनी चाहिये यह आवश्यक ही है, इसलिये काले बाल सिरपर रहें और बढें ऐसा कहा है।

सिरके विषयमें वेदमंत्रमें एक उत्तम उपमा दी है वह अब देखिये—

तिरछे मुखवाला लोटा

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्। तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ अथर्व. १०।८।९

'तिरछे मुखवाला और जिसकी बुधा ऊपरकी ओर है ऐसा एक लोटा है, उसमें सब प्रकारका यश रखा है। वहां सात ऋषि साथ साथ बैठते हैं जो इस महान शक्तिशालीके रक्षक हैं।'

मनुष्यका सिर ठीक लोटेके समान है, पर इसका मुख जरासा तेढा है। इस लोटेका नीचला भाग ऊपरकी ओर है। जैसा उलटे लोटेका रहता है, परंतु इसका मुख ठीक नीचेकी ओर नहीं है, परंतु जरा तिरछा है। विश्वरूपी यश इसमें है। संपूर्ण जो विश्व है उसका सब ज्ञान इस लोटेमें अर्थात् मस्तिष्कमें रहता है। कितना भी ज्ञान हो, वह सब इतनेसे लोटेमें रहता है। जितना चाहिये उतना ज्ञान इस लोटेमें- इस सिरमें-डालते जाओ उसमें वह रहेगा। इसमें नहीं रह सकता ऐसा ज्ञान ही इस विश्वमें नहीं है।

यह सिररूपी लोटा छोटासा ही दीखता है, छोटेसे लोटेके समान ही यह स्थान है, परंतु इसमें संपूर्ण विश्वका संपूर्ण ज्ञान रहा है।

इसी लोटेमें और सात सुराख हैं, वे दो आंख, दो कान, दो नाक और एक मुख ये सात इन्द्रिय हैं, ये इस लोटेमें सुराख जैसे हैं। इन सात सुराखोंमें सात ऋषि रहते हैं। ये ही इन सप्तऋषियोंके आश्रम हैं, यहां रहकर ये सप्त ऋषि तपस्या करते हैं। ये सात ऋषि इस लोटेके अथवा इस शरीरके संरक्षक हैं। ये इसकी रखवाली करते हैं। सिरमें सात ऋषि रहते हैं ऐसा और भी एक मंत्रमें है—

सप्त ऋषियोंका आश्रम

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

वा. य. ३४।५५

'(प्रति शरीरे) प्रत्येक शरीरमें सप्त ऋषि (हिताः) रखे हैं। ये सात ऋषि प्रत्येक शरीरमें रहते हैं। प्रमाद न करते हुए ये सप्तऋषि इस (सदं) शरीररूपी घरका उत्तम संरक्षण करते हैं। जब (स्वपतः लोकं) सोनेवाले आत्माके स्थानको ये सात (आपः) जीवन प्रवाह जाते हैं, (तत्र) उस समय (अ-स्वप्नजौ) न सोते हुए (सत्र-सदौ देवौ जागृतः) इस यज्ञ भूमिके रक्षणके लिये सतत जागृत रहनेवाले प्राण और अपान ये दो देव जागते रहते हैं। ये इस शरीरका रक्षण करते हैं।

दो नेत्र, दो कान, दो नाक और एक मुख ये सात इंद्रिय यहां सप्तऋषि हैं। कईयोंके मतसे यहां वर्णन किये सप्तऋषि त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि ये हैं। ये सात ऋषि कौनसे हैं ऐसी शंका यहां हो सकती है। इससे पूर्व 'उलटे लोटे' का वर्णन आया है। उस वर्णनमें बताया है कि इस तिरछे मुखवाले लोटेमें सात ऋषि बैठे हैं। ये दो नेत्र, दो कान, दो नाक और एक मुख ये ही हैं, अतः येही सप्तऋषि यहां भी लेना उचित है। ये सात ऋषि इस सिरमें हैं।

ये ही सात नदियां हैं। ये नदियां जाग्रतिमें बाहर की ओर जाती हैं और निद्राके समय येही नदियां पुनः अन्दर आत्माकी ओर प्रवाहित होती हैं। जाग्रतिमें आत्मासे निकल कर बाहर विश्वमें जाना और निद्राके समय बाह्य विश्वसे निवृत्त होकर अन्दर आत्माकी ओर वापस आना, यह इनका कार्य सतत चल रहा है। ये सात नदियां इस तरह अन्दरसे बाहर और बाहरसे अन्दर प्रवाहित होती है। जाग्रति और निद्राका यह प्रवाह ऐसा सतत चालू है। यही जीवनका रहस्य है। यही अपनी शक्तिका माहात्म्य है। यही देखना और समझना चाहिये।

जिस समय ये सात प्रवाह बाह्य विश्वसे वापस होकर अपने आत्मामें विलीन होते हैं उस समय ये सातों विलीन होनेके कारण इस समय ये संरक्षणका कार्य कर नहीं सकते। इस समय इसका कौन रक्षण कर सकता है? इस प्रश्नका उत्तर इस मंत्रने दिया है वह यह है कि–

तत्र जागृतः अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।

उस समय दो देव जागते हैं, ये दो देव पहारा करते हुए सतत इस शरीरका संरक्षण करते हैं। यहां स्मरण रखना चाहिये वह यह कि ये दो देव सोते हुए और जागते हुए दोनों समयोंमें इस शरीरका संरक्षण करते हैं। जन्मसे लेकर मृत्यु तक इन दोनों देवोंका सतत, अखंड और प्रमाद न करते हुए पहारा चालू है। इनका संरक्षण बंद हुआ तो मृत्यु ही है ऐसा समझना चाहिये। अन्य सात ऋषि अपना कार्य करते रहें और इन दो देवोंने अपना यज्ञ रक्षणका कार्य बंद किया, तो राक्षस उस यज्ञका नाश तत्काल करेंगे। प्राण और अपान ही ये दो देव हैं। प्राणने अपना कार्य बंद करनेपर शरीरके मरनेमें कोई संदेह ही नहीं है। और शरीरकी मृत्यु होनेपर आंख, नाक, कान, आदि ऋषि भी मर जायंगे इसमें किसी प्रकारकी शंका नहीं है।

विश्वामित्रका यज्ञ

विश्वामित्रके यज्ञका रामलक्ष्मण संरक्षण करते थे इस कथाका भाव भी यही है। विश्वामित्र ऋषि यज्ञ करता था। उसके साथी और ऋषि थे। परंतु उस यज्ञपर राक्षसोंका आक्रमण होता था। इन राक्षसोंका नाश करके यज्ञका रक्षण करनेके लिये दशरथपुत्र राम और लक्ष्मण अयोध्यासे लाये गये। और इन दोनों कुमारोंने विश्वामित्रके यज्ञका रक्षण किया और इस कारण वह यज्ञ योग्य रीतिसे समाप्त हो सका।

इस यज्ञका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि यहां इस शरीरमें ही विश्वामित्रका यज्ञ चल रहा है। यहां प्राण

अपान रूपी रामलक्ष्मण इस शरीररूपी यज्ञका संरक्षण कर रहे हैं। इनसे योग्यरीतिसे संरक्षण होनेपर यह शरीर १२५ वर्ष जीवित रहता है, यहां २४ वर्षोंका प्रातःसवन है, ३६ वर्षोंका माध्यंदिन सवन है और ४८ वर्षोंका तृतीयसवन होता है। १०८ वर्ष इस तरह यज्ञके तीन सवनोंके होते हैं। इसमें बालपनके ८ वर्ष मिलाये जांय तो ११६ वर्षोंका जीवन होता है। यह ११६ वर्षोंतक मनुष्य कार्यक्षम रहना चाहिये। इस आयुके पूर्व मनुष्य क्षीण, जीर्ण अथवा दीन नहीं होना चाहिये। इससे अधिक आयु प्राप्त करे, पर इससे पूर्व मृत्यु नहीं होनी चाहिये। इसीलिये यह सब मंत्रोंका उपदेश है।

बाहुओंमें बल चाहिये

अबतक सिरका विचार हुआ। इस विचारके साथ मंत्रमें आये कई अन्य अंगोंका भी विचार हुआ। अब हम बाहुओंका विचार करेंगे।

" बाह्वोर्बलम्। " बाहुओंमें बल रहना चाहिये यह वेदका आदेश है। ' इन्द्रादयो बाहव आहुरुक्ताः ' इन्द्र आदि देवताएं परमात्माके बाहु हैं। अर्थात् इन्द्रादि देवताओंका वर्णन परमेश्वरके बाहुओंका वर्णन है। बाहु कैसे होने चाहिये ? इस प्रश्नका उत्तर इन्द्रके जैसे होने चाहिये यह है। इसका वर्णन करनेवाले ये मन्त्र हैं-

१ भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु ॥ ऋ० १।१६६।१०
२ सह ओजः प्रादिवि बाह्वोर्हितः ॥ ऋ० २।३६।५
३ सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ॥ ऋ० ५।५७।६
४ ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू ॥ ऋ० ६।४७।८
५ उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता ॥ ऋ० ७।४५।२
६ उभा ते बाहू वृषणा ॥ ऋ० ८।६१।१८
७ बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ॥ ऋ० ८।९६।३
८ उग्रा वः सन्तु बाहवः ॥ ऋ० १०।१०३।१३
९ बाहू राजन्यः कृतः ॥ ऋ० १०।९०।१२

" (१) मानवोंका हित करनेवाले बाहुओंमें बहुत ही कल्याण करनेवाले बल हैं। (२) तुम्हारे बाहुओंमें सामर्थ्य और शत्रुका पराभव करनेका बल है। (३) तुम्हारे बाहुओंमें बल, ओज और विजय प्राप्त करनेकी शक्ति है। (४) तुम बडे वीरके बाहू बलवान् हैं। (५) इसके बाहू बडे हृष्टपुष्ट हैं। (६) तुम्हारे दोनों बाहू बडे बलिष्ठ हैं। (७) तुम्हारे बाहुओंमें विशेष ओज है। (८) तुम्हारे बाहु उग्र हैं। (९) बाहु ही (शरीरमें) क्षत्रिय हैं। "

इस तरह बाहुओंका वर्णन है। यह वर्णन इन्द्रके बाहुओंका हो अथवा मारुतोंके बाहुओंका हो; परंतु यह वर्णन आदर्श बाहुओंका है इसमें संदेह नहीं है। बाहु ऐसे होने चाहिये। बाहुओंमें बल हो और वह बल निर्बलोंकी सुरक्षाके लिये लगे। (भूरीणि भद्रा) बहुत कल्याण करनेवाले बल होने चाहिये। शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, ओज, बल, आदि सब प्रकारके सामर्थ्य बाहुओंमें होने चाहिये। शरीरमें सिर ब्राह्मण है और बाहु क्षत्रिय है। तो क्षत्रियका कार्य कष्टोंसे बचाना है। बाहू बलवान बनाये जांय और उनके बलसे निर्बलोंका संरक्षण हो जाय। बाहु उग्र हों, अर्थात् दीखनेमें बडे शक्तिशाली और सामर्थ्यवान् दीखें और कार्य भी वैसा ही करें।

महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितम् ॥
ऋ० १।८०।८

' इन्द्रका वीर्य बडा है और बाहुओंमें बल रखा है। ' अर्थात् शरीरमें बडा वीर्य चाहिये और बाहुओंमें बडा बल चाहिये। शूरके बाहु शस्त्रोंको चलाते और शत्रुओंको परास्त करते हैं इस विषयमें ये मंत्र देखिये—

बाह्वोर्वज्रमायसम् ॥ ऋ० १।५२।८
शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः। ऋ० २।११।४
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तम्। ऋ० ४।२२।३
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा।
ऋ० ८।९३।२

प्र बाहवः पृथुपाणिः सिसर्ति। ऋ० २।३८।२
उग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान्। ऋ० ४।२२।२

" बाहुपर लोहेका (फौलादका) वज्र धारण किया है। तेजस्वी वज्र बाहुओंपर धारण किया है। चमकनेवाला वज्र बाहुओं द्वारा धारण किया है। शत्रुके निन्यानवे नगर बाहुओंके सामर्थ्यसे उस वीरने तोड दिये। बाहु और हाथ विशाल हैं। वह वीर बाहुओंके सामर्थ्यसे उग्र दीखता है अतएव वह नेताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। "

यह सब बाहुओंका वर्णन वीरता, उग्रता और शूरताको बतानेवाला है।

पांवोंके विषयमें

पांवोंके विषयमें वेदमंत्रोंमें क्या कहा है सो अब देखिये–

ऋष्वा ते पादा प्र यजिगासि । ऋ० १०।७३।३

'जिनसे तुम चलते हो वे तुम्हारे पांव पुष्ट हैं, शक्तिवाले हैं।' पांवमें शक्ति चाहिये यह इसका भाव है और देखिये–

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् । अथर्व. १४।१।६०

'भग देवने ये तुम्हारे पांव बनाये हैं।' अर्थात् ये पांव भाग्य लानेवाले हैं। इसीलिये–

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुः । ऋ० ६।२९।३

'जो भक्त तुम्हारा आशीर्वाद और ऐश्वर्य चाहते हैं, वे तुम्हारे पांवका आश्रय लेते हैं।' यहां पांवका आश्रय करनेसे श्रेष्ठोंका आशीर्वाद मिलता है और उससे ऐश्वर्य प्राप्त होता है ऐसा कहा है। यह पांवका आश्रय श्रेष्ठ पुरुषके पांवका आश्रय है। तथा–

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणता गृहान् ।
अथर्व. १।२७।४

'पांव चलें, स्फुरण उत्पन्न करें, याजकोंके घरोंतक पहुंचावें।'

यहां पांवोंका कार्य बताया है। पांवमें गति चाहिये, स्फुरण चाहिये अर्थात् गतिमें शीघ्रता चाहिये। चलना हो तो शीघ्र गतिसे चलना चाहिये यह इसका तात्पर्य है। अब एक मंत्र पांवोंके विषयमें देखिये–

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां... वलिं हरन्ति ।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥
अथर्व. १०।७।३९

'हाथों और पांवोंसे जिस आत्माको अर्पण करनेके लिये देव बलि लाते हैं वह सबका आधारस्तंभ है।' यहां कहा है पांव जो गमनागमनका कार्य करते हैं वह आत्माके लिये समर्पण करनेके लिये हैं। सभी इंद्रियां इसी आत्माके लिये कार्य करती हैं, उनमें ये पांव भी आत्माके लिये ही अपना कार्य अर्पण करते हैं। इसका अर्थ यह है कि आत्माके लिये ही सब इंद्रियोंका कार्य होना चाहिये। पांवका चलना भी आत्माके लिये ही होना चाहिये। आत्माका अहित हो ऐसा कोई कार्य पांवोंसे नहीं होना चाहिये। कितनी दक्षता वेद दे रहा है वह देखिये। अस्तु।

यहां बताया है कि पांवका गमनका कर्म आत्माके हित के लिये होना चाहिये और इसीके लिये पांवमें बल और पुष्टी आदि गुण होने चाहिये।

यहांतक मनुष्यके दिव्य शरीरको परम उच्च अवस्थातक पहुंचनेके लिये क्या करना चाहिये इसका वर्णन किया है। मनुष्य यहां आया है, मनुष्यने जो जन्म लिया है वह अपने जीवनका सार्थक करनेके लिये ही है। मानव जन्ममें ही यह सार्थकताका अनुष्ठान किया जा सकता है। दूसरे किसी देहमें यह शक्ति नहीं है। इसीलिये वेदने इस देहको 'ऋषि आश्रम' तथा 'देवमंदिर' कहा है। बौद्धोंने इसी शरीरको 'पीप-विष्ठाका गोला' मानकर जो निंदा की है वह सर्वथा अयोग्य है और वेदविरुद्ध होनेसे यह कल्पना ही दूर फेंकने योग्य है।

इस शरीरकी ईश्वरकी आयोजनाके अनुसार बनावट हुई है। इसलिये यह निंदनीय वस्तु नहीं हो सकती। "आत्मानं न निंद्यात्" आत्मनिंदा नहीं करनी चाहिये। यह आर्योंकी पद्धति थी। जो विचार हम मनमें रखते हैं वैसा मन बनता है। इसलिये कभी हीन विचार मनमें रखने नहीं चाहिये। इसीलिये शरीरको ऋषि आश्रम मानकर इसको पवित्र बनानेकी पराकाष्ठा करनी चाहिये।

यह मानवी शरीर उत्तमसे उत्तम पुरुषार्थको सिद्ध करनेका परमश्रेष्ठ साधन है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चारों पुरुषार्थ यहां इस शरीरके उपयोगसे सिद्ध हो सकते हैं। इसलिये शरीरको सुरक्षित तथा कार्यक्षम रखना अत्यंत आवश्यक है। यह शरीर एक अद्भुत यंत्र है और सब यंत्रोंसे यह यंत्र सुकोमल है, इस कारण जैसा इससे उत्तम कार्य लेना चाहिये उसी तरह इसके हरएक अंग अवयव और इंद्रियको सुरक्षित सबल तथा दीर्घजीवी रखना चाहिये। ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये कि जिससे इस शरीरका नाश हो अथवा इसमें क्षीणता उत्पन्न हो सके। इसकी सूचना देनेके लिये ही 'अ-दीनाः स्याम शरदः शतं' हम सौ वर्ष पर्यंत अदीन अर्थात् सामर्थ्यवान होकर रहें ऐसा कहा है।

मनुष्यकी आयुमें आठ वर्ष बालपनके हैं और कमसे कम १२ वर्ष विद्याध्ययनके होते हैं। इस तरह २० वर्ष मानवकी तैयारीमें चले जाते हैं। इसके पश्चात् इस मानवने सौ वर्ष दीन न होते हुए रहना है। ऐसा यह १२० वर्षोंका मान-

वीय जीवनका कार्यक्रम है। सौ वर्ष सौ क्रतु इसने करने हैं और शतक्रतु होना है। अपनी आयुमें सौ ऐसे कार्य करने की जिनसे शिष्टोंका संमान हो, आपसकी संघटना हो और दीनोंकी दीनता दूर की जाय। ये कार्य इसने १०० वर्षतक करने हैं। इस यज्ञमें रोग अपमृत्यु आदिका उपद्रव बीचमें नहीं होना चाहिये। रोग ही इस यज्ञपर राक्षसोंका आक्रमण हैं। यह न होते हुए इस साधकने सौ वर्षोंमें सौ यज्ञ करने हैं। दक्षतासे मनुष्य रहेगा, खान पान विहार भोग आदिके संबंधके अत्याचार यह न करेगा तो ही यह अदीन बनकर इतनी पूर्ण आयुतक जीवित रह सकेगा।

इसीलिये वेदमें सीरसे पांवतक एक एक अंग और अवयवका नाम लेकर उस अवयवको पुष्ट तथा कार्यक्षम रखनेका निर्देश तथा उपदेश किया है। इतना बारीकीके साथ दक्षताका उपदेश देनेका प्रयोजन यही है कि मनुष्य प्रमाद न करे, दुर्लक्ष्य न करे, सदा सावध रहकर अपने अवयवोंको पवित्र बलिष्ठ और कार्य करनेमें समर्थ बनावे।

वेद वारंवार कहता है कि "सर्वमायुः जीव्यासं" संपूर्ण आयुतक हम जीवित रहें। यही उपदेश वेदने वार वार किया है। यह 'पुनरुक्ति' नहीं है, परंतु यह 'अभ्यास' है। जो इस तरह वारंवार उपदेश किया जाता है वह उस ज्ञानके दृढ होनेके लिये कहा जाता है। इस ओर किसीका दुर्लक्ष्य न हो।

आगे ३४ धन्यताके साधन अपने पास करनेका उपदेश है। इनमें कई वैयक्तिक उन्नतिके लिये और कई राष्ट्रीय उन्नतिके लिये हैं।

'ब्रह्म, क्षत्रं, राष्ट्रं, विशः' ऐसा क्रम है। राष्ट्रकी एक ओर ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं और दूसरी ओर वैश्य शूद्र अपने धनधान्यके साथ हैं। ऐसा यह राष्ट्र है। ज्ञानी वीर और धनी मिलकर जिस राष्ट्रकी सहायतार्थ दक्ष रहते हैं वह राष्ट्र बलवान होनेमें कोई संदेह नहीं है। राष्ट्र न रहे तो अकेली व्यक्ति कुछ भी कर नहीं सकती। राष्ट्र पीछे सहायतार्थ रहेगा तो अकेली व्यक्ति भी बहुत कुछ कर सकती है। इसलिये राष्ट्रकी ओर दुर्लक्ष्य नहीं होना चाहिये। मनुष्य अपनी शक्ति बढावे, अपने अन्दर सामर्थ्य लावे और उससे राष्ट्रकी सेवा करे। प्रत्येक मनुष्य मरणधर्मा है परंतु मानवोंका संघ अमर है। इसलिये व्यक्तिको अपनी शक्तियोंका समर्पण राष्ट्रके यशके लिये करना उचित है।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

वा. यजु. २०।२५

'जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलजुलकर कार्य करते हैं वह राष्ट्र पुण्यकारक है और वही बुद्धिसे स्वीकारने योग्य है।'

इस तरह वेदमंत्र द्वारा ब्राह्मण क्षत्रियकी परस्पर मित्रता होगी तो वह राष्ट्र सुखी हो सकता है ऐसा कहा है वह राष्ट्रीय दृष्टिका बडा भारी महत्त्वका आदेश है। ज्ञानी और वीरोंमें राष्ट्रमें वैमनस्य नहीं होना चाहिये। जहां ज्ञानी और शूरोंमें वैमनस्य होता है वह राष्ट्र पतित हो जाता है, वह उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता।

जहां जिस आदेशकी आवश्यकता होती है वहां वह आदेश वेद देता है। यहां देखिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रोंने अपनी वैयक्तिक उन्नति की, ये उच्च अवस्थामें पहुंचे, ये सबल, प्रभावी तथा सामर्थ्यवान बने। पश्चात् ये आपसमें झगडने लगे तो राष्ट्रपर आपत्ति आ जायगी, इसलिये चारों वर्णोंमें एकता रहनी चाहिये इस हेतुसे ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी एकता हो ऐसा यहां कहा है।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नः कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥

वा० यजु० १८।४०

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अर्थात् हमारे राष्ट्रके सब लोगोंमें तेजस्विता रखो।" सब लोग तेजस्वी बनें। सब लोग ज्ञानी और बलवान बनें और सब संगठित होकर सबका उद्धार करें।

यह है व्यक्तिकी उन्नति और राष्ट्रके लिये सबकी सेवाका समर्पण। ऐसा होनेसे ही राष्ट्रका तेज फैलेगा।

व्यक्तिकी उन्नति होनेके लिये योगसाधन प्राणायाम आदि साधन हैं। साथ साथ औषधिसेवन तथा हिरण्य धारण ऐसे भी साधन हैं। शरीरपर सुवर्ण रत्नमणि आदिका धारण करनेसे शरीरके रुधिर प्रवाह पर इष्ट परिणाम होता है और शरीर स्वास्थ्य अच्छी तरह सुधरता है। इसलिये ये उपाय भी वेदने बताये हैं।

"राष्ट्राय परिधत्तन" राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये पदार्थोंका धारण करो यह आदेश है। अपने भोग भोगनेके लिये किसी वस्तुका धारण करना नहीं है, परंतु राष्ट्रसेवा अच्छी तरह करनेकी शक्ति अपनेमें बढे इसलिये स्वयं

किसी वस्तुका धारण करना चाहिये। कितना बहुमूल्य यह उपदेश है ?

मनुष्यका मस्तिष्क देवकोश है। सब देव और देवोंकी शक्तियां इस कोशमें रहती हैं। यह सबको ध्यानमें धारण करनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्य अपने मस्तिष्कका यह महत्त्व जानें और अपने मस्तिष्कका संरक्षण उत्तम रीतिसे करता रहे। मस्तिष्कका संरक्षण करनेका यह अर्थ है कि देवोंकी अनंत शक्तियोंका संरक्षण। यह जितना उत्तम होगा उतना मनुष्यका अभ्युदय और निश्रेयस सिद्ध हो सकता है।

हृदय और मनको एकत्र सीनेका उपदेश यहां दिया है। यदि यह न किया तो हृदयकी भक्ति अत्यधिक बढनेसे तर्क-शून्यता उत्पन्न होकर मनुष्यमें भोलापन बढेगा। अथवा मनकी तर्कशक्ति बढानेसे वह तर्क ही करके नास्तिकताको पहुंचेगा। इसलिये हृदय और मस्तिष्क एक कार्यमें समभावसे लगाये जांय तो ही मनुष्यका समविकास होगा। मानवी उन्नतिमें इस उपदेशका महत्त्व अत्यंत है। प्रत्येक मनुष्य वेदके इस उपदेशको ध्यानमें रखे और ऐसा अवश्य करे।

'मेरा सिर ब्रह्मका स्थान है।' ब्रह्मका ज्ञानस्वरूप है वह सिरमें रहता है। प्रत्येक मनुष्यको इसका पता है। परंतु प्रत्यक्ष ब्रह्म तथा विराट्का स्थान सिर है यह बहुत ही थोडे लोग जानते हैं। इसलिये वेदमंत्रने यहां कहा है कि सिर ब्रह्म है। सिर विराट् है। इससे अपने सिरके महत्त्वका पता लग जाता है। इसलिये सिरका अच्छीतरह संभाल करना चाहिये। सिरका बचाव किया जावे। सिरको सुरक्षित रखा जाय यह उपदेश यहां है।

शरीरके हरएक अवयवके विषयमें वेदने इस तरह ज्ञान दिया है। मनुष्य इसको जाने, अपने शरीरके बल सामर्थ्य और ओजको बढावे, अपना ज्ञान बढावे और शक्तिसामर्थ्यको राष्ट्रके हित करनेमें समर्पण करे और अपने जीवनका सार्थक करे। समष्टि जीवनसे ही अमरत्व प्राप्त होता है।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ पवित्र नरदेह	१	१० हिरण्यधारणसे बलकी वृद्धि	८
२ पुरुषार्थका साधन	,,	११ शरीरकी पुष्टी और दीर्घायु	९
३ स्वर्ग सुवर्ग है	२	१२ सिरदेवोंका कोश है	१०
४ दीर्घायुकी प्राप्ति	४	१३ शरीरके रोग	१२
५ ३४ शक्तियां	,,	१४ काले बाल बढें	१३
६ सर्वांग पूर्ण होना	६	१५ तिरछे मुखवाला लोटा	,,
७ तैंतीस वीर्योंकी प्राप्ति	,,	१६ सप्त ऋषियोंका आश्रम	१४
८ राष्ट्रसेवाके लिये जीवनसमर्पण	,,	१७ विश्वामित्रका यज्ञ	,,
९ मनका छिद्र बुझाओ	७	१८ बाहुओंमें बल चाहिये	१५
		९१ पांवोंके विषयमें	१६